मीरां: 'सीमाबद्ध सत्तात्मक संरचना' से मुक्ति की संघर्ष-गाथा
(के. सच्चिदानंदन की कविताः 'मीरां गाती हैं' के विशेष संदर्भ में)

- पृथ्वी के. षाज
- प्रभाकरन हेब्बार इल्लत

साहित्य पर विचार करते हुए हमेशा प्रेमचंद के मशहूर निबंध का नाम 'साहित्य का उद्देश्य' मेरे भीतर आ जाता है। जिस कालखंड में चारों तरफ़ मुक्तिकामी संघर्ष चल रहा था, उस काल में प्रेमचंद मानव जीवन के क्षितिज को विस्तृत करने के उपकरण के रूप में साहित्य को देखते थे और जीवन के वास्तविक स्थितियों की आलोचना करने के उपादान के रूप में साहित्य पर दृष्टिपात करते थे। साहित्य आपके लिए मन के संस्करण का साधन है, सत्य-आनंद का स्रोत है, जीवन के निर्माण की आधारशिला है, मनुष्य की सिद्धि-समृद्धि का साधन है। उनके ही शब्दों में- "साहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित एवं सुंदर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो... जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य-प्रेम न जागृत हो- जो हममें संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करें, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं... हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो- जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करें, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज़्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"[1]

यह सही है कि कविता रसात्मक होने के साथ-साथ जागरण का बिगुल बजाने वाली भी होती है। कविता एक व्यक्ति के आत्म की अभिव्यक्ति होने के साथ-साथ पाठक की हैसियत से वह असल में दूसरों की जीवन-भावनाओं में प्रवेश कर सकने का रास्ता भी प्रशस्त करती है। दूसरों की भावना के समझ-जुड़ाव की क्रमिकता में मनुष्य के मनोमुकुर में जीवन-संसार के अनदेखे परिदृश्य प्रतिफलित होने लगते हैं और उसी के मुताबिक कल्पनात्मक स्तर पर पाठक उसे जीने लगता है। इस जीवन से मनुष्य का वैचारिक-भावात्मक जगत उत्तरोत्तर समृद्ध होता चला जाता है। जीवन के विविधात्मक स्वरूप के साथ वाकिफ़ हो जाने पर मनुष्य की विवेक-शक्ति उद्बुद्ध होती है। इस उद्बुद्धि के बल पर जीवन का नैतिक[2] आधार उन्नत होता चला जाता है। यही नैतिकता जीवन की संचालिका शक्ति बनती है। मनुष्य की आंतरिक प्रकृति में होने वाले इस तरह का परिवर्तन साहित्य के माध्यम से प्राप्त 'आत्मातिक्रमण' से सिर्फ संभव होता है। इस आत्मातिक्रमण में मनुष्य एक ओर असीम आनंद का अनुभव करता है, साथ ही जीवन-ज्ञान भी प्राप्त करता है। इसलिए फिलिप सिडनी जैसे कवि शिक्षा एवं आनंद को साहित्य के उद्देश्य के रूप में स्वीकार करते हैं।[3] इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य जीवन के ज्ञानात्मक आधार को विकसित करने तथा उसको तरलित कर

मनुष्य बनाने में साहित्य एवं कला की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इसलिए कहा जाता है कि "कविता बुरे और अरुचिकर समय में भी मनुष्य होने की सुरुचि बचाए रखने का काम करती है।"[4]

एक बार समकालीन कविता पर टिप्पणी करते हुए परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं कि "दृश्य यह है कि समूची दुनिया जीवन और अस्तित्व के रहस्य खोकर एक भयावह मंडी में बदल गई है, जहां मूल्य और विचार भी बिकने के लिए अभिशप्त है। जो ताकतवर है, उनका आतंक सब ओर छाया है। वे धर्मांधता और सांप्रदायिकता को वैध, हिंसा को सुंदर और हत्या को कलात्मक बनाकर उन्हें बिकाऊ चीज़ के रूप में तब्दील कर सकते हैं और एक सांस्कृतिक विचार को निरीह तकनीक में सीमित कर सकते हैं।"[5] ऐसी स्थिति में मानवीयता को पुनः प्राप्त करने के लिए कविता की सख्त जरूरत है। 'कविता का अर्थात्' नामक अपनी रचना में वे कविता पर अपनी बातचीत को आगे रखते हुए लिखते हैं कि "महान कविता जीवंत सामंजस्य, आवेगशील उत्तेजना और प्रशांत स्थिरता, सरलता और आनंद व्यंजनात्मकता, तनाव, सौम्यता, लालित्य, लोकमंगल आदि से अर्थ विशिष्टता प्राप्त करती है।"[6] इस विशिष्टता को समकालीन कविता साक्ष्यांकित करती है और विविध प्रकार की संकीर्णता की अंधता को बेनकाब करते हुए जीवन की रागात्मकता को मज़बूत करने के लिए सामाजिक प्रांगण में उतरती है। मलयालम के कवि के. सच्चिदानंदन की कविता इसका ज्वलंत दस्तावेज़ है।

कुंजी शब्दः स्वतंत्रता, पितृसत्ता, सम्मान, नैतिकता, अधिकार

कवि सच्चिदानंदन मलयालम के ऐसे कवि हैं, जिन्होंने मलयालम कविता को नवीन रास्तों से चलाया। आपके लिए कविता जीवन के व्यापक वैयक्तिक एवं सामाजिक संघर्षों की परिणति है। उनकी विविधात्मक गद्यपरक छंद मुक्त कविताओं में राजनीतिक स्वर प्रबल रहे हैं। जहां मनुष्य की गरिमा एवं मैत्री[7,8] आहत होती है तो कवि की लेखनी उसका पीछा करती है। समकालीन मानव जीवन के भौतिक, नैतिक, आत्मीय आकांक्षाओं एवं आशाओं को अपनी कविता के केंद्र में रखने वाले कवि सच्चिदानंदन 'कवियों की भाषा' (1988) नामक एक कविता लिखी है। इस कविता में कविता के अजीबोगरीब रास्तों से होकर विचरण करने वाले कवि 'आन्द्रे आन्द्रेयविच वोज़ेनेसेनस्की' को संबोधित करते हुए उसके मार्फत सच्चिदानंदन का कहना है कि 'कवियों के लिए विश्व भर में एक ही भाषा होती है। वह भाषा मानवीयता की भाषा होती है।'[9] मानवीयता अपने इतर के जीवन के साथ के जुड़ाव का नाम है। इस जुड़ाव के माध्यम से मनुष्य की सामाजिकता मज़बूत होती है। कल्पना के घोड़ों पर सवार होकर सपनों की मोहक दुनिया में कलाकार विचरण करता है और वहां पहुंचकर जीवन के सपनों का ताना-बाना बुनता है। जीवन की सीमाओं को पार करने का सर्जनात्मक प्रयास कविता के बल पर कवि करता है। यहां व्यक्त होता है कि कवि जीवन की सीमाओं को उल्लंखित कर जाने की उसी क्रमिकता में संपूर्ण जीवन की संकरी सीमाओं को तोड़कर विश्वमानवता के साथ काल्पनिक स्तर पर बंधुत्व स्थापित करता है। कवि यह स्वीकार करता है कि मनुष्य के

सांस्कृतिक जीवन के स्तर पर विभिन्नताएं रहते हुए भी मूल रूप में मनुष्य के भाव और संवेग समान हैं।

इन भाव-संवेगों के अनुधावन के सिलसिले में सच्चिदानंदन मानवाधिकार और मानवीय मूल्यों को हमेशा अपनी रचनाओं के केंद्र में रखते हैं। उन्होंने 1987 में 'आदिकविकल' *(शीर्षक का प्रयोग बहुवचन में किया गया है)* शीर्षक कविता में आदिकवियों के नाम से तमिलनाडु के संगम युग के कवियों को संबोधित किया है। कविता में संगम युग के सबसे महत्वपूर्ण तमिल कवि कपिलर, परणर, पेरुमकडुंगो, इडैक्काडनार और अम्मुवनार को विशेष रूप से स्मरण करते हैं। कवि सच्चिदानंदन इन पांचों कवियों की कविताओं के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालते हुए प्रत्येक खण्ड में सारगर्भित टिप्पणी करते हुए अंतिम पंक्तियों में उनसे यह निवेदन करते हैं, 'आदिकवियो, मेरे शब्दों को अपनी कहावतों के वीर्य और करुणा प्रदान करें।'[10] यहां कवि अपनी कविताओं में संगम युग के कविताओं की सी वही शक्ति और विनम्रता लाना चाहते हैं। इसी वीर्य और करुणा के शब्दों से कवि अपनी कविता की कठिन यात्रा शुरू करना चाहते हैं। वे अन्याय और अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह की चिनगारियां पैदा करने के लिए अपनी कविता को सक्षम बनाना चाहते हैं। साथ ही साथ अपने बंधु-जनों के प्रति अपार सहानुभूति तथा करुणा के भाव प्रकट करने की आशा भी करते हैं। द्रविड़ के संगम कवियों में जो सांस्कृतिक ताकत कूट-कूटकर भरी हुई है, उसको अपने शब्दों में भरने की कामना कवि व्यक्त करता है। प्रकृति के साथ अभिन्न संबंध स्थापित करने वाले संगम कवियों को संबोधित करते हुए कवि का कहना है कि आपके सिर सह्य पर्वत के चोटी की भांति ऊर्ध्वोन्मुखी हैं। आपकी कविताओं में फूलों की सुगंध है, सूरज की स्वर्णिमा है, नदी का पानी है, तराइयों की हरियाली है, इंद्रीयबद्ध अनुभूतियां हैं, शब्दों की नाच है, सपनों के पंख हैं, शब्दों की आग है, नीम की कडुवाहट को मिठास में परिवर्तित करने की शक्ति है, दुख की अगाधता के साथ-साथ हिंसक पशुओं के साथ की भिडंत है, संगीतात्मक जिंदगी की सुरलहरियां हैं। कवि कहता है कि पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव स्वरूप आज की पीढ़ी ने निज की परंपरा से मुंह फेर लिया है। इससे व्यक्त होता है कि सच्चिदानंदन की कविता वर्तमान जीवन की सही पहचान हेतु अतीत के साथ संवाद करने के लिए तैयार होती है और विक्षुब्ध होकर वर्तमान जीवन के अंतर्विरोधों को नए ढंग से विलोकित करने का प्रयास करती है। 'बहुरूपी' शीर्षक कविता संकलन की भूमिका में कवि का कहना है कि 'वैयक्तिक और सामाजिक संघर्षों से मेरी कविता जन्म लेती है। मनुष्य के अंतर्मन को झकझोरने वाली घटनाओं की दुनिया में तथा मनुष्य के बुनियादी अधिकारों से वंचित हो जाने के कालखंड में उनका स्पंदन कविता में होना एकदम स्वभाविक है।'[11] आपकी कविता 'रण्डु कविकल' (दो कवि) में कवि कहता है कि 'पिंजरे में बंद कर दूध देने के लिए कविता नहीं लिखी जाती है, वह सबके जीवन आकाश में कौंधों को खाकर आसमान में तारों को खिलाएं, गाना बरसाकर खून की सफ़ाई करें।'[12] कवि बेहिचके बताते हैं कि मानवता के साथ का रागात्मक संबंध ही कविता का मूल पाथेय है। 'तभी कविता के कंधों पर चिड़िया आ बैठेगी, वृक्ष फूलेंगे, फलों से

उसकी शाखाएं नीचे की ओर झुक जाएंगी, आपस में लड़ने वाले लोग गले मिलाएंगे। कविता की भाषा साफ-सुथरे पानी की भांति जीवन की गहराई का तल दिखाएगी।'[13] इसलिए कहा जाता है कि कविता अपनी सांस्कृतिक दखलंदाज़ी से जीवन के रास्ते पर नई रोशनी दिखाती है। इस रोशनी की तलाशी में कविता अतीत के साथ का रिश्ता छोड़ती नहीं। सच्चिदानंदन की कविता इसका मिसाल है। वे अपने देश की हिंसात्मकता और सत्ता के गलियारों की ओर सफ़र करते हैं ताकि अपने शब्दों को नई उत्तेजना-उत्प्रेरणा प्राप्त हो जाए। इस भाव-बोध का अनुसरण करके कवि अपना काव्य-जीवन शोषितों और सर्वहारा वर्ग के लिए समर्पित करते हैं और वे उम्मीद करते हैं कि वह पूरे उमंग-शक्ति-धैर्य-सौंदर्य के साथ जी सके। यथार्थ को व्यक्त करने के लिए कल्पना और प्रतीकात्मकता का सम्मिश्रण करके सच्चिदानंदन पाठक को विरल अनुभूति की विस्तृत दुनिया में ले आते हैं और मानवीयता के विविधात्मक रूपों से हमें मुखातिब कराते हैं। इसी भावना के अनुसरण में सच्चिदानंदन का कवि मन मीरां के पास चला जाता है।

हिंदी भाषा एवं साहित्य के विद्यार्थी होने के नाते मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि मलयालम के कवि सच्चिदानंदन हिंदी के भक्तिकालीन कवियों पर नई भाव-संवेदना के साथ कविता क्यों करते हैं? उनकी कविताओं से होकर मैंने सफर किया तो पता चला कि जिस कालखंड में मनुष्य अपनी स्वतंत्रता, समानता, बंधुता, अधिकार जैसे जीवन के उन्नत मूल्य खंडित होते हुए देखते हैं, ऐसी स्थिति में कवि सच्चिदानंदन इन मूल्यों के वाहक-विस्तारक के रूप में विशेषकर हिंदी के भक्तिकालीन साहित्य के कवियों (कवयित्रियों) को लेते हैं और उनकी वैचारिक भंगिमाओं तथा जीवनपरक संकल्पनाओं के साथ संवेदनात्मक-संवादात्मक स्तर पर जुड़ते हैं। इस क्रम में वे मीरां, कबीर, रैदास, अक्का महादेवी, अंडाल आदि की जिंदगी तथा उनकी वाणी की विवेचना करते हैं। इस संदर्भ में मैं विशेष रूप से अध्ययनार्थ मीरां पर लिखी गई सच्चिदानंदन की कविता का विवेचन-विश्लेषण करना चाहती हूं।

'मीरां गाती हैं' (मीरा पाडुन्नु-1992) शीर्षक कविता का अध्ययन शुरू से लेकर अंत तक किए जाने पर लगता है कि कवि बेशुमार प्रतीकावली के माध्यम से जीवन के सत्तात्मक संबंधों के तले किस प्रकार स्त्री की जिंदगी की स्थिति रहती है, दिखाता है। वर्तमान जीवन का परिदृश्य यह है, पितृसत्ता के विविध रूप, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि रूप स्त्री पर हावी हैं। इन सत्ताओं के विविधात्मक रूपों को प्रस्तुत कविता में पुरुष (राजन), धन-दौलत, अंधेरा, अनामिका, सिंदूर, खड्ग, मुकुट, सिंहासन, कारावास, आंसू, ज़हर आदि के माध्यम से व्यक्त किया गया है। इसके समानांतर स्त्री के भीतर की विराट स्वतंत्र कामना को पंख, आसमान, तानपुरा, नाच, पैजनी, इंद्रधनुष, कन्हैया, बारिश, वसंत, खिड़की, सागर, फूल, जंगल, वेणुगान, कमल आदि के माध्यम से रूपकात्मक भाषा में व्यक्त किया गया है। भक्तिकाल के कवियों की भाव-संपदा में दिखती भंगिमाओं के विविधात्मक स्वरूप को जानकर कबीर-मीरां पर आलोचनात्मक टिप्पणी करते हुए परशुराम चतुर्वेदी ने एक बार कहा है कि "वास्तव में कबीर एवं मीरां- इन दोनों में स्वतंत्र प्रेम तथा निर्भयता के भाव कूट-कूट कर भरे थे। यह

दोनों अपने-अपने सांसारिक एवं सामाजिक बंधनों व परिस्थितियों को सदा उपेक्षा की दृष्टि से देखते रहे और सर्वसाधारण की कड़ी आलोचनाओं का भी इन दोनों ने पूर्णतया तिरस्कार किया।"[14] इस दष्टि से सच्चिदानंदन की कविता परिवार को 'नीड़म' (घोंसला) के रूप में चित्रित करती है। वह नीड़ या घर वास्तव में मीरां के लिए बंधन है। स्त्री को अलंकृत करके एक वस्तु के रूप में पेश करने वाले तंत्र के साथ प्रतिवाद करती हुई मीरां कहती हैं कि अब मैं समझ रही हूं कि वह मेरे लिए जंजीर था, मुझे खुद को बंधन में डालनेवाला परिवार मुझे नहीं चाहिए। उस परिवार से प्राप्त उन सभी धन-दौलत को वापस देने के लिए मीरां कविता में सन्नद्ध होती हैं। वे उसको एक बोझ के रूप में अनुभव करती हैं। दूसरों से प्रदत्त 'कृपा' (ओं) से मुक्त होकर मीरां कहती हैं कि मैं अपने जीवन की स्वतंत्रता को पाना चाहती हूं। मीरांबाई के बारे में विचार करते समय उनका एक पद मन में गूंजने लगता है। वह इस प्रकार है- "म्हारा री गिरिधर गोपाल दूसरां ण कूयां।/दूसरा न कूयां, साधां सकल लोक जूयां।। (टेक)/भाया छांड्यां, बंधा छांड्या छांड्या सगा सूयां।/साधां ढिग बैठि बैठि लोक लाज खूयां।/भगत देख्यां राजी हयां, जगत देख्यां रूयां।/आंसुवां जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बूयां।/दध मथ घृट काढ़ लायां डार दया छूयां।/राण विष रो प्याला भेज्या पीय मंगणा हूया।/मीरां री लगण लग्यां होण हो जो हूयां।।"[15] इसमें मीरां अपने प्रिय या प्रियतम गिरिधर गोपाल या गिरिधर नागर के प्रति अनन्य तन्मयता व्यक्त करती हैं। वे तन-मन की तन्मयता इसलिए दिखाती हैं कि 'गिरिधारी लाल' संकट में साथ देने वाला होता है तथा रक्षक भी। उसके लिए मीरां मर मिटने तक के लिए सन्नद्ध रहती हैं। सारे कुल-वैभव, संपत्ति-सत्ता आदि का 'त्याग' कर कृष्ण को मीरां ने अपनाया है। उसके लिए उन्होंने 'कुल की कानी' छोड़ी। संतों के ढिग-ढिग बैठ-बैठकर लोक-लाज खो बैठीं। मीरां गर्व के सहित कहती हैं कि उन्होंने अपने जीवन में सारतत्व को ग्रहण किया है। राणा ने जो विष का प्याला भेजा था, उसको उन्होंने मग्न हो कर पी लिया। कान्ह की कृपा से जो होना था, वही हुआ। विष का असर उसपर नहीं फैल गया। मीरां का वंशीधर किसी दूसरे का नहीं, वह उसके खुद की संपत्ति है। इस पद में मीरां दिखाती है कि प्रेम ही उसके लिए सबकुछ है, वही एकमात्र आसरा है। वे लौकिक जीवन की सुख-सुविधाओं व उपलब्धियों को छाछ (असार) की तरह त्याग देती हैं और जीवन का मंथन कर मक्खन रूपी प्रेम (सार तत्व) को ग्रहण करती हैं। इस सार तत्व से ही आत्मा को तृप्ति प्राप्त होती है। यह प्रेम वास्तव में संकीर्णता (जाति-पांत-संप्रदाय, धर्म-देश-भाषा, रंग-रूप-वेश/भूषा, संस्कृति-देश/राष्ट्र, स्त्री/पुरुष जैसी भावनाएं) से मुक्ति का नाम है। आजकल यह देखा जाता है कि मानव को उपर्युक्त संकीर्ण गलियों में फंसाने की कोशिशें जारी हैं। इससे केवल मानव के भीतर नफ़रत की आग फैल जाती है, हिंसा का परिविस्तार होता है, जीवन भर में अशांति फैल जाती है, जीवन असर्जनशील होता चला जाता है। मीरां अपने जीवन को प्रेममय बना देने के क्रम में रैदास को (जिनका जन्म चमार कही जाने वाली जाति में हुआ था) अपना गुरु स्वीकार करती हैं। वे स्त्री-पुरुष की तथाकथित विभाजन रेखा को मिटाती हैं और 'संतनों' के साथ बैठकर गहन संवाद-परिसंवाद में जुड़ जाती हैं। इस सामाजिक अनुभवों

की विस्तारता के बल पर मीरां वास्तव में मीरां बनती हैं। स्त्री-जीवन की सामाजिकता के विकास से किस प्रकार स्त्री की जिंदगी का विस्तार होता है, उसकी सर्जनशीलता विस्तारित होती है, मीरां उसका ज्वलंत प्रमाण बनकर आज के पाठक के सम्मुख आती हैं। भारतीय जीवन में हम यह देखते हैं कि स्त्री की जिंदगी परंपरागत मूल्य-सांस्कृतिक-नैतिक व्यवस्था के भीतर सिमट जाती है। इसलिए ही मीरां का जीवन संघर्ष आधी आबादी की गुलामी के बंधन से मुक्ति का संघर्ष बन जाता है। इसलिए 'मुक्तिकामी चेतना' के प्रतीक के रूप में मीरां सच्चिदानंदन की कविता में अवतार लेती हैं। कविता में मीरां बार-बार कहती हैं कि मेरे 'कटे हुए पंख' वापस करो। यह रूपक वास्तव में जीवन के दायरे को सत्ता के बल पर सीमित रखने की पितृसत्तात्मक विकृति का पर्दा हटाती है। पंख वास्तव में स्वतंत्र विचरण की मानवीय इच्छा की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। वे जानती हैं कि स्वतंत्रता का मतलब जीवन का अनंत विकास होता है, उसके लिए खुला हुआ जीवन परिसर होता है। मलयालम के कवि वल्लत्तोल नारायणमेनोन ने लिखा था कि 'यदि पंछी सोने के पिंजरे में आबद्ध होने पर भी वह बंधन ही है।' प्रकारांतर से हम इस अवसर पर यह कह सकते हैं कि स्त्री (मीरां) की जिंदगी भले ही राजमहल में हो, वह स्त्री मुक्त नहीं हो सकती है। पुरुष वर्चस्ववादी विचारधारा में स्त्री एक औजार मात्र है।[16] इसलिए वे आचार-अनुष्ठान के रूप में उंगली में पड़ी अंगूठी को भी चाहती नहीं, वे उसके पीछे कार्यरत तंत्र की एषणा को समझती हैं। उसकी अंतरात्मा कहती है कि उसमें भी पुरुष के गूढ़ अहम की छाप है। कविता कहती है कि 'सत्ता' की ताकत रूपी कनक-तलवार (वैभवपूर्ण पितृसत्तात्मकता का प्रतीक) से तुमने मेरी 'तानपुरा' की तंत्रियों को काट दिया था। यह तानपुरा शरीर के भी प्रतीक के रूप में कविता में आता है। परंपरागत काव्य-रूढ़ि में वीणा या बांसुरी आदि भी शरीर के प्रतीक बनकर आते हैं। उस तानपुरा से निकलने वाले गीत (जीवन राग) को तुमने नष्ट-भ्रष्ट किया। मीरां बखूब जानती हैं कि उसका मुक्ति-गीत स्ता की नज़रों में स्वीकार्य नहीं रहेगा। आगे सच्चिदानंदन की मीरां कहती हैं कि आपके द्वारा पहनाई गई मालाएं मेरे गले पर फंदे की तरह कस रही हैं। मीरां दर्द भरी वाणी के साथ कहती हैं कि मेरे पैर नृत्य के कदम नहीं भर सकते हैं, वे सब भूले-बिसरे गए हुए हैं। उसकी चाहत यही है कि जीवन के 'नृत्य-ताल-लय' को पुनः प्राप्त किया जाए। वे गली-गली में नाचना चाहती हैं, यहां तक कि इंद्रधनुष की मदिरा पी-पीकर खुलकर नाचना चाहती हैं। धूम-धाम व ऐश- आराम से भरी जिंदगी के चंगुल से मुक्त होकर खुली हवा में विचरण करने के लिए इच्छुक मीरां का दिल रेशमी कपड़े के जाल में दम घुटता है और उससे वे मुक्त होना चाहती हैं और प्रेम (कृष्ण) में डूब जाना चाहता है। "थे म्हांरै घर आओ जी प्रीतम प्यारा"[17], "हरि म्हारा जीवण प्राण आधार"[18], "म्हार गिरिधर आगां नाच्या री"[19] आदि पदों के बार-बार वाचन से यह व्यक्त होता है कि कृष्ण उनके जीवन के सपनों का सार है, वही 'दरद दीवाणां मीरां' का हितकारी है, वही 'पीतांबरधारी मीरां' का एकमात्र आसरा है, वही मुरलीधर-वैजयंतीमाला पहनने वाला कान्ह प्रेम का तिरंगायित सागर है। वास्तव में मीरां के शब्द प्रेममय जीवन के विविधात्मक रूप हैं। अंतर-बाहर संघर्षें से मुक्ति

की औषधि के रूप में मीरां के यहां प्रेम काम करता है। इसी के बल पर वे स्वावलंबन का शाश्वत अनुगत बन जाती हैं। इस सफर में भक्ति-भजन उसका औजार रहा है, कान्हैया इकलौता आधार।

मीराबाई को केवल एक विरहिणी या साध्वी के रूप में नहीं, बल्कि एक साहसी युग परिवर्तक के रूप में रेखांकित किया गया है। मध्यकालीन सामंती व्यवस्था, राजपूती मान-मर्यादा और कड़ी प्रथाओं के बंधनों को तोड़कर कृष्ण भक्ति में लीन होना उनकी आंतरिक दृढ़ता को दर्शाता है। मीरां कृष्ण को अपना पति मानती थीं। भगवान के प्रति वात्सल्य भाव या आदर छोड़कर मीरा ने माधुर्य भाव अपनाई। रामप्रकाश के अनुसार "उनकी दृष्टि में राज्य-वैभव, मणि-माणिक्य एवं पाट-पटम्बर निरर्थक हैं, उनकी तुलना में प्रिय-प्रेम को गूदड़ी कहीं अधिक मूल्यवान् है।"[20] मीरा की इस विद्रोही- भावना ही उन्हें लौकिक स्त्री-पुरुषों से भिन्न कराती है। वे आगे लिखते हैं कि "संसार की असारता से उत्पन्न विरक्ति ने मीरा की वाणी में यत्र-तत्र दैन्य-भावना का भी संचार किया है।"[21] सच्चिदानंदन की मीरां भी इसी दीनता को वाणी देती हुई दिखाई देती हैं। अस्वतंत्रता की बेड़ियों में फंसी मीरां अपने जीवन को सरल बनाने का प्रयास करती हैं। कविता में मीरां राजमहल के प्राचीरों से निकलकर अपने राजमुकुट को उतारकर अपने बालों को खोलना चाहती हैं और उसे आंधी के झंडे के रूप में फहराए जाने की इच्छा प्रकट करती हैं। कविता यहां जीवन में क्रांति का माहौल खड़ा करती है। मीरां बारिश में भींगकर अपने जीवन रूपी वृक्ष के पत्तों, शाखाओं और तन पर वसंत-ऋतु के फैल जाने की प्रतीक्षा करती हैं। यहां बारिश जीवन की उर्वरता का प्रतीक बनकर आती है और वसंत जीवन के प्रफुल्लित विकास की आभा लिया हुआ नज़र आता है।

मीरां संपूर्ण भक्तिकालीन संत कवियों के बीच मशहूर रही हैं। आज के समय में मीरांबाई का अध्ययन नए दृष्टिकोण के साथ करने पर ही उनकी प्रासंगिकता साफ़ होगी। इससे ही परंपरा का अधुनातन विकास होगा। तभी हम साहित्य की गतिमान प्रक्रिया को समझ सकेंगे। मीरांबाई खुद अपने को विविधात्मक बंधनों से मुक्त होकर तत्कालीन युग की नारी को आज़ाद करने का संकल्प लिया था। मध्ययुग में मानव-मुक्ति का बिगुल बजाने वाली मीरां आधुनिक नारी विमर्श का सूत्रपात करती हुई दिखाई देती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मीरां की वाणी वि-भेद का निराकरण करने वाली होती है। वह 'सांप्रदायिकता' की गंध से मुक्त रही, समता, एकात्मकता के समर्थन के साथ हिंसा-हत्या का विरोध करती रही। भौतिक जगत के प्रति जो प्रगाढ़-अगाध प्रेम मीरां का रहा, वही सघन आध्यात्मिक प्रेम में परिवर्तित होकर अवतरित हुआ। इससे मीरां के जीवन-काव्य का रासायनिक तत्व आमूलचूल बदलता जाता है और उनमें क्रांति-बोध भर जाता है। इस क्रांतिबोध के बल पर वे अपने भीतर ही भीतर खास मनोवैज्ञानिक प्रतिरोध खड़ा करती हैं। मीरां हरदम अनुभव करती हैं कि स्निग्ध-प्रेम के बिना जीवन में 'अंधकार' भर जाता है। मीरां का प्रेम वासना के घेरे से मुक्त होकर विषय-विषयी के मध्य अभेदता स्थापित करता है, अहं का पूर्णतः तिरस्कार कर उदात्तीकृत महान आसन पर विराजता है। जीवन के यौवन के सपनों को वापस मांगने वाली

सच्चिदानंदन की मीरां हंसी-किलकारियों से भरे बचपन को वापस मांगती हैं। स्वतंत्रता[22] की बलवती चाहत को प्रकट करती मीरां जीवन की खिड़कियों (संभावनाएं) को खोलना चाहती हैं। अपने जीवन की परिस्थितियों को मरुस्थल के साथ तुलना करती मीरां कहती हैं कि मरुस्थल की हवा में भर-भर कर मेरे जीवन रूपी चंपक वृक्ष की सुंगध चारों तरफ़ फैल जाए। मीरां को लगता है कि 'घनश्याम विपिन', 'नीलाकाश', 'समुंदर की अनंत नीलिमा' उनको बुला रहे हैं।

मध्यकालीन संत कवि तुलसीदास ने लिखा है कि 'विरंचि ने इस दुनिया में स्त्री की रचना ही क्यों की? दूसरों के अधीन या गुलाम बनकर जीनेवाली नारी (व्यक्ति) को सपने तक में सुख का एहसास नहीं होता है।' इस 'पराधीनता' की स्थिति में सत्ता के वर्चस्व के साथ उसका 'आतंक' भी रहता है। अपने जीवन-संग्राम में मीरां स्वाधीनता को परम मूल्य के रूप में स्वीकार करती हैं। वे किसी पर शासन नहीं करती हैं, अपने ऊपर किसी को शासन करने भी नहीं देती हैं। इसलिए सत्ता के बंधनों को तोड़ने के लिए मीरां तड़पती हैं। भक्ति के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सत्ता की तथाकथित मान्यताओं के साथ मीरां प्रतिवाद करती रहती हैं। उस संघर्ष का दर्द केवल मीरां बखूब जानती हैं, झेलती भी हैं। काव्यात्मक अंदाज़ में मीरां कहती हैं कि "घायल की गत घायल जाण्यौ हिवड़ो अगम संजोय/जौहर की गत जौहर जाण्यौ क्या जाण्यां जिय खोय।"[23] पंक्तियों में आया हुआ 'घायल' शब्द जीवन के कटु अनुभव से बढ़कर और क्या हो सकता है! यहां दर्द का रूपकात्मक प्रयोग अपूर्व अनुभूति की दीप्ति लिया हुआ नज़र आता है। इसलिए ही सच्चिदानंदन की मीरां कहती हैं कि वे जीवन में प्रेम, स्वतंत्रता, समानता, बंधुता की सुंदरता को चख चुकी हैं। उन्होंने जीवन में सपना देखना शुरू किया है। वे जीवन के इस क्षण असीम आनंदानुभूति में रम जाती हैं।

मीरां की शादी के करीब पांच साल के बाद पति राणा सांगा भोजराज की युद्ध में मृत्यु हो जाती है। उस वक्त राजपुतानी संस्कृति के रस्म के अनुरूप मीरांबाई सती नहीं करती हैं। वे घोषणा करती हैं कि "भजन करस्यां सती न होस्यां।"[24] एक ओर मीरां परंपरागत अपनी छवि बनाए रखती हैं, पर दूसरी ओर उसका भंजन करती हैं। मीरां का घुंघरू बांधना परंपरा का हिस्सा हो सकता है, पर संत जनों के बीच घुंघरू बांधकर नाचना मीरां की क्रांतिकारिता का जीवंत पहलू है। वे घर-परिवार की चार दीवारी के भीतर की दकियानूसी तथाकथित नैतिक-आचार संहिता का भंजन करती हैं। वे इसलिए ही अष्टछाप कवियों द्वारा उलाहना सुनाए जाने पर भी वल्लभ संप्रदाय की मान्यताओं का पालन नहीं करती हैं। मीरां यह भी जानती हैं कि मध्यकाल के कवियों का स्त्रीपरक दृष्टिकोण अधिकांशतः (सूरदास, गुरुनानाक आदि को छोड़कर) सकारात्मक नहीं रहा है।[25] मीरां किसी की अधीनता किसी ही हालत में स्वीकार नहीं करती हैं या नहीं कर सकती हैं। इसलिए समस्त बंधनों से मुक्त होकर वे कान्ह के पास चली आती हैं। राणा तो पति था, पर झूठा था। वह अधीनस्थता की मांग करता है, संकट में साथ नहीं देता है, पर कन्हैया ऐसा नहीं है। अपनी रचनाओं में 'महान और पुष्ट विचार धारण करने की ताकत' (लोंगिनुस से आभार) उन्हें जीवन की संघर्ष

भरी पृष्ठभूमि प्रदान करती रही। इसके सहारे वे अपनी जिंदगी में एक युटोपिया (आदर्श लोक) तैयार कर रही थीं। वे उसी आदर्श लोक में कान्ह के साथ के आत्मवत रागात्मक संबंध के बल पर जीवन के समस्त दुख भूल जाती हैं। मीरा जानती हैं कि झूठ-मूठ के हठ करने से प्रेम हासिल नहीं होती है, हंस-हंस कर प्रियतम की उपलब्धि नहीं होती है।

कवि सच्चिदानंदन का कहना है कि 'सच्ची कविता पसीना और आंसुओं से बड़े किए गए पलाश वृक्ष का एक फूल है।'[26] वह फूल एक लंबी परंपरा का हिस्सा है, जिसे काव्यात्मक भाषा में कवि सच्चिदानंदन पेड़ के रूपकत्व में बांध देते हैं। पारंपरिक काव्य बोध में वृक्ष जीवन के पर्याय के रूप में पाठक के सम्मुख आता है। उस जीव वृक्ष की जड़ें अतीत में पसर जाती हैं और अतीत की परंपरा रूपी मिट्टी से खाद-पानी सोखकर वर्तमान में खड़ा होता है और उस वृक्ष की अनेक शाखा-प्रशाखाएं फूट पड़ती हैं, जो विशाल आसमान की तरफ़ फैली हुई होती हैं। मीरां हज़ारों सालों की पीड़ा-वेदना लेकर पलाश वृक्ष बन आज भी हमारे बीच खड़ी हैं। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि भौतिक परिवेश से विभिन्न उपादानों को स्वीकार कर मनुष्य का सांस्कृतिक बोध विकसित होता है। इस सांस्कृतिक बोध के बल पर ही मनुष्य नवीन सांस्कृतिक संकल्पनाओं को रूपायित करता है। पलाश वृक्ष का फूल विकसित होकर फल बनता है, उसी फल का बीज फिर नया पेड़ बनकर उग आता है। इसी सांस्कृतिक नैरंतर्य को कवि यहां पलाश वृक्ष के माध्यम से उद्घाटित करता हुआ नज़र आता है। इस प्रकार की कविता मानव जीवन को मानवोचित बनाती है। प्रस्तुत कविता में मीरां नवीन मूल्यवत्ता एवं विकसनशील ज्ञान-संपदा के बल पर जीवन को नया रूप देती रहती हैं, जिसके माध्यम से मनुष्य अपने ही जीवन के अंतर्विरोधों को संबोधित करते हुए अग्रगामी जीवन को नवीन ढंग से बिताने में सफल निकलता है। इसलिए सच्चिदानंदन के भीतर का कवि समकालीन भाव-बोध को वैचारिक समृद्धि देने के क्रम में अतीत में प्रवेश करता है। इसलिए हर कवि की कविता में अपने पुरखों की वैचारिकता, दर्शानिकता, भाषा, संस्कृति, शैली इत्यादि का पुट न्यूनाधिक मात्रा में देखने को मिलेगा। सच्चिदानंदन की मीरां यह स्वीकार करती हैं कि स्वतंत्रता का रंग मोर पंख का रंग है, उसका नाद वेणु नाद का सा मनोहर है। जैसे ऊपर उल्लिखित किया जा चुका है कि वेणु भी शरीर का प्रतीक है, उससे निश्रित राग जीवन का ही राग या जीवन के प्रति का अनुराग है। जीवन के संघर्षों के धूलि धूसरित पसीने में उस गड़रिए (कन्हैया) की सुनहरी गंध है। मीरां कविता में याद इसकी भी करती हैं कि जीवन संघर्ष का धनी कृष्ण का जीवन भी सत्ता के आंतकों (मातुल कंस के आंतक और भयावहता के बीच कृष्ण का जन्म हुआ था) के बीच गुज़रा है। अब उस कृष्ण की संगति मीरां को मिली है। अब उनके मन में डर तनिक भी नहीं रह गया है। अपनी चांदी के जूते के साथ उन्होंने अपने जीवन से भय को ठुकरा दिया है। इस भय मुक्ति से मीरां की स्वतंत्र चेतना पंख पसारती है। अतः सच्चिदानंदन की मीरां कहती हैं कि वे पराग बनकर फैलना चाहती हैं। यहां पराग जीवन की सृजना हो सकता है। मीरां जीवन की आंसू रूपी यमुना नदी में कमल दल के रूप में फिर से खिलने की आशा प्रकट करती हैं। उम्मीद है कि आज तक जो

विषपान उन्होंने किया है, वह अमृत के रूप में परिवर्तित होगा ही। इस वैचारिक तेज के बल पर मीरां तो कविता के अंत तक आते-आते पितृसत्ता के चिह्नों को मिटाती हैं, यहां तक कि ललाट पर लगाए सिंदुर को भी परंपरा का उल्लंखन करते हुए निकाल देती हैं। लगता है कि सच्चिदानंदन की काव्य-संवेदना परंपरा में प्रवेश कर उसके भीतर नवीन क्रांति चेतना की होली खेलती है।

उपर्युक्त कविता के विवेचन से सार रूप में इतना कहा जा सकता है कि मीरां धर्मसत्ता, राजसत्ता (सामंती संकीर्णता) तथा पितृसत्ता[27] की मानवविरोधी यंत्रणा की पोल खोलती हैं और अपने जीवन और वाणी के बल पर क्रांति का शंखनाद करती हैं। उनका जीवन-संघर्ष भारतीय स्त्री-मन की छटपाटाहट का पोल खोलता है। अपनी जीवनानुभूतियों को विपुल तार्किकता के बल पर मीरां यह संभव भी कराती हैं। वे अतुल आत्मविश्वास के साथ परिवारवाद और उच्चवर्गीय नैतिक बंधनों को चुनौती देती रहीं। 'दासी मीरां' की वाणी संगीत और माधुर्यपूरित 'हरि-अविनाशी', 'भक्त-बछल', 'अधम-उधारण' की भक्ति के कलेवर में नवीन जीवन चेतना को लेकर हमारे पास आज भी आती है और हमें नए ढंग से खुद के जीवन परिवेश को परिवर्तित करने के लिए उकसाती रहती है। मीरां एक ओर अपने गोपाल के लिए सेज सजाती हैं, नाचती-गाती-फिरती हैं, कुल मर्यादा की नीति-व्यवस्था की आक्रमकता का विरोध करती हैं और अपने आत्म-सम्मान को बचाए रखने के लिए सत्ता द्वारा निर्धारित सीमाबद्ध संरचना से बाहर निकलने हेतु संघर्ष करती रहती हैं।[28] मीरां मानव की अंतर्भूत शक्तियों के विकास के आलोक में स्वतंत्रता को स्वीकार करती हैं और बृहद मानवीय संगठन के आलोक में सामाजिक जीवन को देखती हैं।

संदर्भ

1. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, जनवरी, हंस प्रकाशनः इलाहाबाद, 1967. पृ. 10-26.
2. The word (Ethics) is related to the Greek ethos habit, custom. It is used in a number of related senses, which have to be distinguished to avoid confusion. Normative ethics is the rational inquiry into, or a theory of, the standards of right and wrong, good and bad, in respect of character and conduct, which ought to be accepted by a class of individuals. This class could be mankind at large, but we can also think of medical ethics, business ethics, etc. as a body of standards that the professionals in question ought to accept and observe. This kind of inquiry and the theory resulting from it (well-known examples are Kantian ethics and utilitarian ethics) do not describe how people think or behave, but prescribe how people ought to think and behave. This is accordingly called normative ethics, since its main aim is to formulate valid norms of conduct and of evaluation of character. The study of what general norms and standards are to be applied in actual problem-situations is also called applied ethics. Mautner, Thomas. Dictionary of Philosophy. Penguin Books Ltd: England. 2005. P. 201.
3. Poesy, therefore, is an art of imitation, for so Aristotle termeth it in his word Mimesis, that is to say, a representing, counterfeiting or figuring forth; to speak metamorphically, a speaking picture, with this end, to teach and delight. D. J Enright

and Ernst De Chickera, English Critical Texts 16th century to 20th century. Oxford University Press: Oxford. England. 1962. P. 9.

4. जगूड़ी, लीलाधर. रचना प्रक्रिया से जूझते हुए. वाणी प्रकाशन, नई दिल्लीः 2015. पृ. 13.
5. श्रीवास्तव. परमानंद. कविता का अर्थात्. वाणी प्रकाशनः नई दिल्ली. 2008, पृ. 11
6. वही, 86.
7. Dignity is a sense of self-worth, self-respect and rightful honour. It is about one's place under the sun. It is a positive affirmation that does not need its validity attested by another. An individual senses both the presence and deprivation of it. Krishna, T.M. We the People of India. On Text: Chennai. 2026. P. 361.
8. Love is not enough; what is required is Maitri. It is wider than love. It means fellowship not merely with human beings but with all living beings. It is not confined to human beings. Is not such Maitri necessary? What else can give to all living beings the same happiness which one seeks for one's own self, to keep the mind impartial, open to all, with affection for every one and hatred for none? Ambedkar. Writing and Speeches. Moon, Vasant. (Compilation Vol.2). The Educational Department. Maharashtra. 1982. P. 129.
9. सच्चिदानंदन, के., तिरंजेडुत्ता कवितकल (1965-98). करन्ट बुक्सः तृश्शूर. 178.
10. वही, 158.
11. सच्चिदानंदन, के. बहुरूपी, डी.सी. बुक्स, कोट्टयम, 2011. (भूमिका से)
12. वही, पृ. 33.
13. वही, पृ. 76.
14. चतुर्वेदी, परशुराम. मीरांबाई की पदावली. हिंदी साहित्य सम्मेलनः प्रयाग. 1970, पृ. 76.
15. शास्त्री, ओमप्रकाश शर्मा. मीरांबाई की पदवली. हिंदी साहित्य संसार. नई दिल्लीः 1972. पृ. 24.
16. स्त्रियों पर नियंत्रण की व्यवस्था के तीन उपक्रम अथवा स्तर थे- पहला विचारधारा; दूसरा, स्त्रियों को उनके नाते-रिश्ते में आने वाले पुरुषों के नियंत्रण में रखकर; और तीसरा, अनुशासन और तय किए गए कायदों के दायरे को लांघने का दुःसाहस करने वाली स्त्री को दंडित करने के राजाधिकार के स्तर पर। विचारधारा के स्तर पर स्त्रियों पर नियंत्रण के लिए उन्हें स्त्रीधर्म अथवा पतिव्रत धर्म की दीक्षा दी जाती थी। स्त्रियां पत्नी के लिए निर्धारित किए गए आचार व्यवहार आत्मसात करती थीं ताकि वे समाज के ठेकेदारों द्वारा स्थापित पतिव्रता के आदर्श की कसौटी पर खरी उतर सकें। हिंदू समाज में ऊंची जातियों में पितृसत्तात्मक वर्ग जाति संरचना की आचार संहिता रचने का कार्य ब्राह्मणों के जिम्मे था। किसी भी व्यवस्था की मजबूती का सूचक उसके विचारधारा की सूक्ष्म-स्तरीय व्यापकता है। इस लिहाज से ब्राह्मणवादी पितृसत्ता को सफल और मजबूत कहा जा सकता है। कारण, स्त्रियों के लिए इसने पतिव्रता की जो धारणा गढ़ी वह उनके दिलोदिमाग में काफी गहरी पैठ बनाने में कामयाब रही। स्त्रियों का अपनी यौनिकता का खुद ही नियंत्रण कर अथवा पतिव्रत धर्म निबाह कर सम्मानित और गौरवान्वित महसूस करने का मिसाल शायद ही किसी अन्य पितृसत्ता में देखने को मिले। पतिव्रता की धारणा ने न केवल ब्राह्मणवादी पितृसत्ता के स्त्रियों की यौनिकता पर नियंत्रण की पर्दापोशी की बल्कि स्त्रियों की ही सक्रिय भागीदारी के माध्यम से

असमान और पदानुक्रमित संरचना के आसान पुनरुत्पादन को भी संभव किया। इस तरह, स्त्री की यौनिकता पर नियंत्रण के उपक्रम और स्त्री की पराधीनता ने एक विचारधारा के रंग में रंगकर 'स्वाभाविक' का रूप अख्तियार कर लिया। चक्रवर्ती, उमा. जाति समाज में पितसत्ता. ग्रंथ शिल्पीः नई दिल्ली. 2026. पृ. 73.

17. भाटी, देशराज सिंह. मीराबाई और उनकी पदावली. अशोक प्रकाशनः नई दिल्ली. 1971. पृ. 180.
18. शास्त्री, ओमप्रकाश शर्मा. मीरांबाई की पदवली. हिंदी साहित्य संसार: नई दिल्ली. 1972. पृ. 8.
19. वही, पृ. 23.
20. रामप्रकाश, मीरांबाई की काव्य-साधना. हिंदी साहित्य संसार:: नई दिल्ली. पृ. 37.
21. वही, 38.
22. Prior to constructing a definition of freedom, however, it is important to understand Lon Fuller's conceptualization of freedom because of its value as a framework for any definition. Fuller draws a sharp distinction between "freedom to," which implies choice among a range of alternatives, and "freedom from," which Fuller points out can accommodate any ideology no matter how antithetical to human choice. For example, "freedom from" can be applied to freedom from capitalist exploitation or colonialism or, in more recent terms, from Western ideological imperialism (with charges such as Twitter being an "information weapon" serving U.S. political ends). "The objectives of the welfare state and of Buddhism can with equal facility be stated in terms of 'freedom from,' the one promising freedom from poverty, the other freedom from the desire for worldly goods."8 In the extreme, as identified by Fuller, it can even mean "freedom from freedom." Callister, Paul D. "WHAT IS MEANT BY FREEDOM? Introduction – Reflections on "Purpose" and "Freedom to." Pace Law Review. (Vol. 37, No. 2. 2017): 1.
23. शास्त्री, ओमप्रकाश शर्मा. मीरांबाई की पदवली. हिंदी साहित्य संसार. नई दिल्लीः 1972. पृ. 74.
24. पांडेय, मैनेजर. भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य. वाणी प्रकाशनः नई दिल्ली, संस्करण 1993. पृ. 27.
25. भक्तिकाव्य को नया आयाम मिलता है स्त्री भक्त कवयित्रियों से और उनका लिखा भक्तिकाव्य के सौन्दर्य को द्विगुणित कर देता है। यह अजीब विरोधाभास है कि जिस भक्तिकाव्य में स्त्रियों के प्रति बड़े कड़वे विचार हैं, उसी काल में भक्ति-क्षेत्र में अखिल भारतीय स्तर पर बड़ी संख्या में स्त्रियां दाखिल होती हैं। पुरुष धर्माचार्यों एवं सन्त कवियों के विचार स्त्रियों के प्रति अनुदार ही हैं। स्वामी जीव गोस्वामी ने मीरा का मुख देखने से मना कर दिया था। कबीर के विचार स्त्रियों के सम्बन्ध में अत्यन्त कड़वे हैं। वे संवेदना के स्तर पर नारी विरह के अनूठे गीत रचते हैं, किन्तु चेतना के स्तर पर किसी भी रूप में नारी को स्वीकार नहीं करते। नारी उनके लिए माया, नरक की खान आदि न जाने क्या-क्या है। दादू तो अस्सी साल की बूढ़ी औरत को भी नहीं बक्शते। सगुणपन्थियों की तुलना में निर्गुणपन्थी अधिक नारी-निन्दक हैं। निर्गुणपन्थियों में भी सामाजिक रूप से सर्वाधिक जाग्रत कबीर और

दादू की नारी-निन्दा इतनी अभद्र, अमर्यादित और असुन्दर है कि कोई भी आँख-कान बन्द कर ले। यह कबीर आदि का सर्वाधिक असुन्दर पक्ष है। दूसरे भक्त कवियों के नारी विषयक विचार भी कमोबेश ऐसे ही हैं। अपवाद सूरदास और नानक हैं, जो नारी-सौन्दर्य और प्रेम की ऐसी मनोहर झांकी प्रस्तुत करते हैं कि कठोर मर्यादावादी आलोचक भी अपनी कसौटी भूल जाते हैं। सिंह, गोपेश्वर. भक्ति आंदोलन और काव्य. वाणी प्रकाशनः नई दिल्ली. 2017, पृ. 64.

26. सच्चिदानंदन, के., तिरंजेडुत्ता कवितकल (1965-98). करन्ट बुक्सः तृश्शूर. 158
27. Patriarchy Literally 'rule of the father', the term was originally used to describe social systems based on the authority of male heads of household. It has now acquired a more general usage, especially in some feminist theories, where it has come to mean male domination in general, as reflected in the systematic disadvantaging and oppressing of women in employment, politics, and domestic life. Scott, John. Dictionary of Sociology. Oxford University Press: Oxford. 2014. P. 552.
28. मध्ययुगीन नारी-विरोधी समाज में ही मीरा बाई अकेली ऐसी हैं, जिन्होंने सामाजिक रूढ़ियों और पारिवारिक मान्यताओं को तिलांजलि देकर स्वतन्त्रता का वरण किया। यह अद्भुत साहस था। मारवाड़ जैसी विशाल रियासत में मेड़ता के जागीरदार की पुत्री और मेवाड़ के राणा परिवार में ब्याही जाने वाली मीरा ने न मारवाड़ की झूठी प्रतिष्ठा की परवाह की और न मेवाड़ की छद्म नैतिकता की। वह नारी थी, परिवार की नैतिकता को अच्छी प्रकार समझती थी। वह जानती थी कि कम उम्र में विधवा हुई नारी की इन राजपरिवारों में दासी से भी बुरी स्थिति होती है। शादी के सात-आठ वर्ष बाद ही अपने पति राजकुमार भोजराज के शव के साथ न तो वह सती हुई और न विधवाओं की तरह अन्त्यज बनकर रहने को तैयार। सिंह, कुंवरपाल. भक्ति आंदोलनः इतिहास और संस्कृति. वाणी प्रकाशनः नई दिल्ली. 2021. पृ. 229.

डॉ. प्रभाकरन हेब्बर इल्लत
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
कालीकट विश्वविद्यालय, पी.ओ. कालीकट विश्वविद्यालय,
थेनहिप्पलम, मलप्पुरम जिला, केरल राज्य - 673 635
9446661250/9447661250
Email: drhebbarillath@gmail.com
drprabhakaranhebbarillath@gmail.com